"बिहार के सृजन में डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा का योगदान"

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वर नगर दरभंगा

पी० एच० डी० के लिए प्रस्तुत

शोध प्रारुप

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. अमीर अली खान
एसोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
ल.ना.मि.वि. दरभंगा

शोधार्थी

प्रवीण कुमार
क्रमांक– E2210047
PAT- 2021-22

CamScanner

1. <u>प्रस्तावित पीएच.डी. शोध कार्य का शीर्षक</u>

बिहार के सृजन में डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का योगदान

2. <u>प्रस्तावना</u>ः

डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा एक प्रमुख भारतीय नेता, शिक्षाविद् और राजनेता थे। उन्होंने संविधान सभा के पहले अध्यक्ष के रूप में भारत के राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, देश के संविधान के निर्माण में सक्रिय योगदान दिया। शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान गहरा था, क्योंकि उन्होंने राधिका सिन्हा लाइब्रेरी और बिहार स्कूल शिक्षा बोर्ड जैसे संस्थानों की स्थापना की। इसके अलावा, डॉ. सिन्हा एक कुशल लेखक और लेखक थे, जिन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक और समसामयिक विषयों पर प्रभावशाली पुस्तकें लिखीं।

हममें से अधिकांश लोगों ने डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का नाम संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष के रूप में ही सुना है। हालाँकि, यह उनके लिए एकमात्र उपलब्धि नहीं थी। विधानसभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य के रूप में, उन्हें अंतरिम अध्यक्ष के रूप में कार्य करना पड़ा। उनकी उपलब्धियाँ एक शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ और बिहार के हित के प्रबल समर्थक के रूप में उनके योगदान में निहित हैं। उन्होंने बिहार प्रांत के गठन और उसके बाद राष्ट्रीय क्षेत्र में उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. सिन्हा का जन्म वर्तमान बिहार के आरा जिले में एक अपेक्षाकृत संपन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। आरा स्कूल में अपनी प्रारंभिक शिक्षा के बाद, उन्होंने पटना कॉलेज से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। बाद में 1889 में वह कानून की पढ़ाई के लिए लंदन चले गये। यहीं पर वह डब्ल्यूसी बनर्जी, जॉर्ज यूल, एसएन बनर्जी आदि नेताओं के संपर्क में आए। उन्होंने दादाभाई नौरोजी के लिए भी प्रचार किया, जो ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रवेश के लिए चुनाव लड़ रहे थे।

लेकिन उनके जीवन में जो बदलाव आया, वह ब्रिटेन में अपने जन्मस्थान बिहार के संबंध में उन्हें मिला अनुभव है। वहां उन्हें पहचान के संकट का सामना करना पड़ा - क्योंकि उन्होंने पाया कि बिहार नामक जगह के बारे में कोई नहीं जानता था, क्योंकि यह बंगाल प्रेसीडेंसी का हिस्सा था। वह स्वयं इसे याद करते हुए कहते हैं, "मेरे लिए आज के बिहारियों को उस शर्म और अपमान की भावना को व्यक्त करना कठिन होगा जो मैंने और कुछ समान रूप से संवेदनशील बिहारी मित्रों ने ब्रिटेन में अपनी पढ़ाई के दौरान महसूस किया था, जब उन्हें एहसास हुआ कि हम लोग बिना सोचे-समझे काम कर रहे हैं। कोई भी व्यक्तित्व, बिना किसी प्रांत के अपना होने का दावा करने के लिए, वास्तव में, नाम के साथ किसी भी निवास के बिना।" (उनके ब्रिटिश दोस्त उन्हें भारत का नक्शा दिखाते थे और पूछते थे कि क्या "बिहार" नाम की कोई जगह है)।

अंग्रेज़ ही नहीं, ब्रिटेन से लौटते समय उन्हें पंजाब का एक आदमी भी मिला जो बिहार नाम की किसी जगह से अनजान था। इस पर विस्तार से चर्चा करने के बाद भी वे इसे बंगाल के रूप में ही पहचानेंगे। इसके अलावा, बिहार लौटने पर, उन्हें रेलवे स्टेशन पर "बंगाल पुलिस" के बैज के साथ एक बिहारी पुलिसकर्मी मिला। इन सभी घटनाओं के साथ-साथ प्रशासनिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक भेदभाव और उपेक्षा ने सिन्हा को बिहारियों के लिए एक अलग प्रांत बनाने के बारे में दृढ़ संकल्पित कर दिया। **हर जगह बंगालियों के बर्चस्व के कारण उनके अन्दर की अस्मिता जाग उठी।**

प्राचीन काल में, बिहार भारतीय सभ्यता का केंद्र था, जहां हर्यक, मौर्य और गुप्त जैसे राजवंशों की शक्ति का केंद्र था। इसने न केवल बिम्बिसार अशोक, चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि जैसे महान शासकों को देखा, बल्कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म के रूप में सामाजिक-धार्मिक

आंदोलनों का केंद्र भी था। आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, वरमिहिर, चरक आदि महान वैज्ञानिक इसी महान भूमि की उपज थे।

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद बिहार को भाग्य में उलटफेर का सामना करना पड़ा, और सत्ता का केंद्र पश्चिम में कन्नौज, आगरा और दिल्ली और पूर्व में बंगाल की ओर स्थानांतरित हो गया। यह बंगाल में पालास और सेना जैसी पूर्वी शक्तियों और आगरा-दिल्ली में राजपूतों और सल्तनत के बीच एक बफर जोन बनकर रह गया था। इसके विकास, सांस्कृतिक और आर्थिक, दोनों से समझौता किया गया क्योंकि कोई राज्य संरक्षण नहीं था। नतीजा यह हुआ कि बिहार को गुमनामी की गर्त में धकेल दिया गया।

शेरशाह ने हुमायूँ को हराने के बाद अपने संक्षिप्त शासनकाल में बिहार के गौरव को बहाल करने की कोशिश की, लेकिन फिर से, आगरा में मुगलों के उदय ने बिहार को हाशिये पर धकेल दिया। यद्यपि अकबर ने बिहार के सूबे को बनाया था, लेकिन यह अवध और बंगाल के राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण सूबों के बीच स्थित था। बक्सर की लड़ाई के बाद, इलाहाबाद की संधि (1765) बिहार के लिए ताबूत में आखिरी कील थी, क्योंकि ओडिशा के साथ-साथ उसके दीवानी अधिकार भी कलकत्ता में अंग्रेजी कंपनी को दे दिए गए थे। यहीं से बिहार पूर्णतः बंगाल के अधीन हो गया।

आने वाले दशकों में, सामंती बिहार, जिसे ऐतिहासिक उपेक्षा का सामना करना पड़ा था, पर "नव प्रबुद्ध" बंगालियों का कब्ज़ा हो गया, जिन्होंने बिहार की आर्थिक और राजनीतिक दोनों गतिविधियों को नियंत्रित किया। शैक्षणिक संस्थानों के साथ-साथ सरकारी सेवाओं पर भी उनका दबदबा था। यहां तक कि बिहार में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए स्थापित किए गए पटना कॉलेज में भी बंगालियों का वर्चस्व था।

बिहार के सामंती सोच वाले लोगों को भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति उनकी नापसंदगी के लिए आंशिक रूप से दोषी ठहराया जाना चाहिए, लेकिन साथ ही, यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि प्रबुद्ध बंगालियों ने किसी भी तरह से अपने बिहारी "भाइयों" को शिक्षा प्रदान करने का प्रयास नहीं किया। . उनकी रुचि केवल बिहार के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर हावी होने में थी। यदि गोविंद चरण जैसे कुछ शिक्षित बिहारी पुरुष भी थे, तो उन्हें बड़ी कठिनाई से नौकरियाँ मिलीं।

इसके अलावा, बिहार सांस्कृतिक और भाषाई रूप से बंगाल से बिल्कुल अलग था, और उनका मिलन केवल एक कृत्रिम था। इन सभी बातों पर बिहार के अधिवक्ताओं द्वारा तर्क दिया गया, जिसमें डॉ. सिन्हा के अलावा, महेश नारायण, हसन इमाम आदि शामिल थे। उन्होंने मिलकर "द बिहार टाइम्स" नामक समाचार पत्र प्रकाशित किया, जिसने जनता की राय को पक्ष में ढालने की कोशिश की। एक अलग राज्य का. दरअसल, डॉ. सिन्हा ने इस अखबार के जन्म को बिहारी नवजागरण का शुरुआती बिंदु बताया था।

बिहार के एक अलग प्रांत के सपने को 1905 में झटका लगा जब लॉर्ड कर्जन ने राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिए सांप्रदायिक आधार पर बंगाल का विभाजन कर दिया (हालांकि, आधिकारिक कारण प्रशासनिक सुविधा थी)। किसी भी अन्य भारतीय की तरह, बिहारी नेताओं ने भी इस सांप्रदायिक विभाजन की आलोचना की, और डॉ. सिन्हा ने 'हिंदुस्तान रिव्यू' में "निचले प्रांतों का विभाजन - एक वैकल्पिक प्रस्ताव" शीर्षक से लेख लिखा।

उन्होंने, महेश नारायण के साथ, "बंगाल का विभाजन और बिहार का विभाजन" नामक पुस्तक भी लिखी, जिसमें उन्होंने 1905 के बंगाल विभाजन की निंदा की, और इसके बजाय, तर्क दिया कि बिहार और ओडिशा को अलग करना एक बेहतर निर्णय होगा। प्रशासनिक दृष्टिकोण. इसके

लिए, उन्होंने सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व का सांख्यिकीय डेटा और भाषाई और सांस्कृतिक कोण भी प्रदान किया।

धीरे-धीरे, सरकार को भी बिहारियों के साथ भेदभाव और खराब प्रतिनिधित्व का एहसास हुआ और इस तरह बिहार में सेवा के लिए हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया।

1910 में, डॉ. सिन्हा बंगाल विधान परिषद के लिए चुने गए, जहां उन्होंने बिहार के एक अलग प्रांत की मांग जोरदार ढंग से उठाई। उन्होंने अली इमाम को गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद का हिस्सा बनने के लिए राजी किया, जिसका इस्तेमाल फिर से बिहार के मुद्दे पर बहस करने के लिए किया गया। इन सभी प्रयासों के कारण अंततः लॉर्ड हार्डिंग को 1905 के बंगाल के सांप्रदायिक विभाजन को रद्द करना पड़ा और 1911 के दिल्ली दरबार में बिहार और ओडिशा के अलग प्रांत के निर्माण की घोषणा की गई। इस प्रकार, 1 अप्रैल 1912 को, बिहार और ओडिशा प्रांत एक हो गए। पटना को अपनी राजधानी बनाते हुए। वास्तव में, यह भाषाई आधार पर विभाजित होने वाला पहला ब्रिटिश भारतीय प्रांत था (स्वतंत्रता के बाद आंध्र प्रदेश पहला था)।

डॉ. सिन्हा आने वाले वर्षों में भी अपनी मातृभूमि के लिए काम करते रहे। बिहार के निर्माण के बाद उनकी कुछ उपलब्धियों में शामिल हैं: केंद्रीय विधान सभा के पहले उपाध्यक्ष (1921), बिहार और ओडिशा के राज्यपाल की कार्यकारी परिषद के सदस्य और साथ ही इसके विधान परिषद के अध्यक्ष, ओडिशा सीमा आयोग के अध्यक्ष (1930) बनना। और 1936 से 1945 तक पटना विश्वविद्यालय के कुलपति रहे।

3. पूर्व अध्ययनों की समीक्षा

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के प्रखर चिंतक-आलोचक तथा साथ ही कला एवं संस्कृति के गंभीर अध्येता समाजवादी चिंतक सच्चिदानंद सिन्हा की सामूहिक रचनाएँ 'सच्चिदानंद सिन्हा रचनावली' के रूप में प्रकाशित हुई हैं। वरिष्ठ पत्रकार, अनुवादक और शोधकर्ता अरविंद मोहन ने आठ खंडों वाले इस मौलिक संकलन का संपादन किया है। प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा किया गया है। सच्चिदानंद सिन्हा ने अंग्रेजी और हिंदी में खूब लिखा। (हालांकि वह फ्रेंच और जर्मन भी जानते हैं।) सिन्हा की केवल कुछ अंग्रेजी रचनाओं का ही हिंदी में अनुवाद किया गया। रचनावली के संपादक ने ही 'जाति व्यवस्था: मिथक, वास्तविकता, चुनौती' का हिंदी अनुवाद किया था, जिसे राजकमल प्रकाशन ने ही प्रकाशित किया था।

सिन्हा द्वारा लिखित 'जाति व्यवस्था: मिथक, वास्तविकता, चुनौती' भारत में जाति व्यवस्था के बहुचर्चित और शोधित विषय पर एक अद्वितीय कार्य है। प्रकाशन के समय पुस्तक की टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट में प्रमुखता से समीक्षा की गई थी। अंग्रेजी में सिन्हा की अन्य प्रमुख रचनाएँ जैसे 'द इंटरनल कॉलोनी', 'सोशलिज्म एंड पावर', 'द बिटर हार्वेस्ट', इमरजेंसी इन पर्सपेक्टिव: रिप्रिव एंड चैलेंज', 'एडवेंचर्स ऑफ लिबर्टी', 'द परमानेंट क्राइसिस इन इंडिया: आफ्टर जनता' ', क्या?' राष्ट्रता और संप्रदाय', 'मानव सभ्यता और राष्ट्र-राज्य', समाजवाद के बढ़ते कदम', 'उपभोक्ता संस्कृति', मार्क्सवाद को कैसे समझें', 'पूंजी का अंतिम अध्याय', नक्सली आंदोलन का वैचारिक संकट', संस्कृति और समाजवाद', संस्कृति विमर्श 'पूंजीवाद का पतझड़', लोकतंत्र की चुनौतियाँ' आदि सिन्हा ने कहा है कि इन पुस्तकों के लेखन की प्रेरणा समाजवादी आंदोलन के दौरान उभरी विभिन्न समस्याओं और उनके समाधान के लिए किए गए प्रयासों से मिली।

94 वर्षीय सिन्हा का लेखन एक समाजवादी कार्यकर्ता के रूप में उनकी राजनीतिक गतिविधियों के साथ-साथ लगभग साठ वर्षों की अवधि तक फैला हुआ है। उनका जीवन, जैसा कि उन्होंने स्वयं एक बार कहा था, "आकाश में भटकते बादल की तरह रहा है"। ऐसे व्यक्ति के लेखन की संपूर्ण सामग्री जुटाने का कठिन कार्य संपादक और उनके सहयोगियों ने किया है। रचनावली का संकलन कालानुक्रमिक न होकर विषयगत है। इस पद्धति ने पाठकों के लिए उनकी रुचि के विषय की एक विशेष मात्रा खरीदना सुविधाजनक बना दिया है।

रचनावली के प्रथम खंड की प्रस्तावना स्वयं सिन्हा ने लिखी है। प्रस्तावना में, उन्होंने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से शुरू हुई अपनी राजनीतिक सक्रियता का संक्षिप्त विवरण देते हुए, बंबई, दिल्ली और बिहार में अपने प्रवास के बारे में बताया है। सभी आठ खंडों में एकत्रित सामग्री को लेखक द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है। पाठकों का लाभ. संपादक ने निम्नलिखित विषयों के तहत सामग्री संकलित की है: पहले खंड में 'कला, संस्कृति और समाजवाद', दूसरे में 'स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, किसान समस्याएं और शहरी गरीबी', तीसरे में 'गांधी, लोहिया, जेपी और नक्सलवाद', चौथे में 'आपातकाल, जनता पार्टी का प्रयोग, पंजाब संकट और राजनीतिक गठबंधन', पांचवें में 'जाति, जातिवाद और सांप्रदायिकता', छठे में 'नया समाजवाद, पुराना समाजवाद', सातवें में 'उदारीकरण, वैश्वीकरण' और भविष्य' और अंतिम आठवें खंड में 'आंतरिक उपनिवेशवाद और बिहार-केंद्रित शोषण'।

रचनावली की इस परिचयात्मक समीक्षा में इस विशाल सामग्री का विस्तृत विश्लेषण संभव नहीं है। हालाँकि, सिन्हा के विचारों और उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं को संक्षेप में रेखांकित किया जा सकता है। सिन्हा का लेखन एक साथ वैचारिक-सैद्धांतिक और आलोचनात्मक है। वह कोई विशेषज्ञ-विद्वान नहीं है. कला से लेकर विज्ञान तक, वह मानव-प्रयास को समग्रता में देखते हैं। इसीलिए उन्होंने आधुनिक विद्वता/अनुसंधान के लगभग सभी

विषयों जैसे राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, मानव विज्ञान, सौंदर्यशास्त्र आदि का अध्ययन किया है। विभिन्न विषयों का उनका विशाल और गहरा अध्ययन उनके सैद्धांतिक रूप में भी परिलक्षित होता है। आलोचनात्मक लेखन के रूप में. रचनावली को पढ़ने से पता चलता है कि लेखक ने आधुनिक युग की उन्नीसवीं, बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के निर्माण में निहित बौद्धिक बहसों, आंदोलनों, संकटों और समाधानों की गहराई से पड़ताल की है। सिन्हा, अपने बौद्धिक उद्‌यम में, वैश्विक स्तर पर संपूर्ण मानवता के एक विचारक के रूप में खड़े हैं, जो 'मानवीय चेहरे के साथ वैश्वीकरण' की बहुचर्चित और वांछित अवधारणा को चुनौती देते हैं। न केवल उदारीकरण-वैश्वीकरण के मित्रवत आलोचक ऐसे विचार की संभावना की वकालत करते हैं, बल्कि वैश्वीकरण के कट्टर विरोधी भी उससे मुग्ध/प्रसन्न महसूस करते हैं। इस बहस में सिन्हा ने मानव जाति के अस्तित्व के लिए एकमात्र भविष्य के रूप में 'मानवीय चेहरे के साथ वैश्वीकरण' की तुलना में 'नए चेहरे के साथ समाजवाद' के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

सिन्हा के समग्र लेखन में एक अंतर्दृष्टि मिलती है जो मानवता के भविष्य के लिए एक दृष्टिकोण का आह्वान करती है। यह दृष्टिकोण समानता, लोकतंत्र, विकेंद्रीकरण, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अहिंसा, श्रम की गरिमा, त्याग, सह-अस्तित्व और निश्चित रूप से नैतिकता जैसे बुनियादी मूल्यों से प्रेरित है। ये सभी मूल्य उनके लेखन के केंद्र में हैं, जिनके आधार पर वे विकास और जीवन शैली के पूंजीवादी मॉडल का समाजवादी विकल्प प्रस्तुत करते हैं। सिन्हा के बारे में यह खास बात है कि उन्होंने इन मूल्यों को अपने जीवन में भी आत्मसात किया है. वह किसी विश्वविद्‌यालय या शोध संस्थान से जुड़े नहीं रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्होंने स्कूली शिक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ दी। हमेशा सार्वजनिक पुस्तकालयों पर निर्भर रहने के कारण, उन्होंने अपनी पढ़ाई की सुविधा के लिए कभी भी निजी पुस्तकालय नहीं रखा।

वह कभी भी अपने काम के लिए पुरस्कार स्वीकार नहीं करते। एक बार उन्होंने भारत में विद्वानों द्वारा सुविधाओं/सुविधाओं की बढ़ती मांग पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि ब्रिटिश काल के दौरान शैक्षणिक और शोध कार्य करने वाले ब्रिटिश अधिकारी अपनी छुट्टियों के दौरान विशेष सुविधाओं के बिना दूर-दराज के क्षेत्रों की यात्रा करते थे। गांधीजी की तरह सिन्हा का मानना है कि मनुष्य का जीवन उपभोक्तावादी आनंद के लिए नहीं है, बल्कि मुख्य रूप से विचारों के लिए है, जिसकी क्षमता प्रकृति ने केवल मनुष्य को दी है।

पूंजीवाद ही नहीं, समाजवाद के प्रचलित मॉडलों में भी विकास की अवधारणा के मूल में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति है। वैश्वीकरण की घटना ने इस प्रवृत्ति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। सिन्हा युद्धों, गृहयुद्धों, षडयंत्रों, असमानताओं, विस्थापनों, पर्यावरण विनाश, प्राकृतिक आपदाओं और नैतिकता की भारी कमी से त्रस्त आधुनिक सभ्यता के अंध उपभोक्तावादी जोर का एक उपयुक्त विकल्प के साथ विरोध करते हैं। इस प्रकार, सिन्हा पूरे जोर-शोर से विकास के पूंजीवादी-उपभोक्तावादी मॉडल का दावा करते हुए आम तौर पर विद्वानों/कार्यकर्ताओं द्वारा सराहे जाने वाले "स्थिरता" के विचार में नहीं फंसते हैं। सिन्हा, अपनी पुस्तक 'समाजवाद: अस्तित्व के लिए एक घोषणापत्र' के अंत में गांधी को याद करते हैं: "[आधुनिक सभ्यता के उपभोक्तावादी जोर के संदर्भ में] हम गांधी के शब्दों को याद कर सकते हैं, 'दुनिया के पास हर किसी की ज़रूरत के लिए पर्याप्त है लेकिन हर किसी के लिए पर्याप्त नहीं है।" लालच'"।

सिन्हा मार्क्सवाद में नैतिकता के सवाल से भी जूझते हैं। वह स्वीकार करते हैं कि मार्क्स में नैतिक तत्व की कमी नहीं है. सिन्हा कहते हैं कि जब मार्क्स फैक्ट्री प्रणाली के तहत श्रमिकों की अमानवीय स्थितियों के बारे में विस्तार से बताते हैं तो कोई भी राजधानी में "नैतिक आक्रोश के अंतर्निहित स्वर से चकित हो जाएगा"। हालाँकि, सिन्हा के अनुसार, मार्क्स "इस नैतिक दृष्टिकोण को अपने समाजवादी सिद्धांत के केंद्र में नहीं रखते हैं"।

सिन्हा की विद्वता का एक पहलू ध्यान आकर्षित करता है यानी उनका लेखन अकादमिक/अनुसंधान संस्थानों के बाहर हुआ है। कहने की जरूरत नहीं है कि नवउदारवादी युग के दौरान संस्थानों में किए गए प्रामाणिक ज्ञान और शोध का भारी अवमूल्यन हुआ है। 'नए भारत' की नई शिक्षा और ज्ञान के नाम पर उच्च पूंजीवादी व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की सेवा के लिए कुशल मजदूरों को तैयार किया जा रहा है। वह सुविधा भी सीमित आबादी के लिए उपलब्ध है। देश में प्रमोशन के लिए पैसे के बदले किताबें और शोध पत्र प्रकाशित करने का एक पूरा उद्योग स्थापित हो गया है। विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों के अधिकारी स्वयं अपना कार्यकाल बढ़ाते हैं और अनुलाभ तय करते हैं, स्वयं को वरिष्ठ प्रोफेसर और प्रोफेसर एमेरिटस के रूप में नियुक्त करते हैं। आज के शासकों द्वारा शिक्षा और ज्ञान का तुच्छीकरण, व्यावसायीकरण और सांप्रदायिकरण गैर-जिम्मेदाराना ढंग से किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों/संस्थानों के शीर्ष पर बैठे विद्वान सरकारों के नवउदारवादी-सांप्रदायिक एजेंडे के साथ तत्परता और खुशी से सहयोग करते हैं। सिन्हा का सारा लेखन संस्थानों के बाहर हुआ है।

4 अध्ययन का उद्देश्य, महत्व एवं प्रसांगिकता

प्रेरणा अक्सर सबसे अप्रत्याशित स्थानों से उभरती है, और पहले के युग में, "बिहार" नामक क्षेत्र ने खुद को बंगाल के प्रमुख प्रांत से ढका हुआ पाया था। 1905 में बंगाल के उथल-पुथल भरे विभाजन के दौरान, बिहार की अपनी अलग पहचान नहीं थी और वह बंगाल के प्रभुत्व के माहौल में घिरा हुआ था। लेकिन इस भूली हुई भूमि के भीतर, एक उल्लेखनीय व्यक्ति उभरा, जिसने बिहार के इतिहास के पाठ्यक्रम को बदल दिया और इसे सुर्खियों में लाया। लॉर्ड कर्जन की "फूट डालो और राज करो" की विभाजनकारी नीति ने बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग करने की कोशिश की, जिससे बिहार देश की चेतना से और भी अलग हो गया। ऐसा लग रहा था कि बिहार का महत्व कम हो गया है, लेकिन नियति को कुछ और ही

मंजूर था। इस अस्पष्टता के बीच, एक असाधारण व्यक्ति, सच्चिदानंद सिन्हा, इतिहास के इतिहास में अपनी सही जगह का दावा करने के लिए आगे बढ़े। हालाँकि उनका नाम कई लोगों के लिए अपरिचित हो सकता है, इस का उद्देश्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा के उल्लेखनीय जीवन और योगदान पर प्रकाश डालना है।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. सिन्हा न केवल एक प्रख्यात शिक्षाविद् थे, बल्कि एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, विपुल लेखक और समर्पित वकील भी थे। प्रमुखता की ओर उनकी यात्रा तब शुरू हुई जब उन्होंने संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष की भूमिका निभाई, एक महत्वपूर्ण पद जिसने उन्हें देश के भविष्य को आकार देने की अनुमति दी।

अपने अनुकरणीय नेतृत्व से डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने न केवल बिहार के सपनों में जान फूंकी बल्कि लोगों के दिलों में अपना नाम भी अंकित किया। अपनी मातृभूमि के प्रति उनका अटूट समर्पण और बिहार के लिए एक अलग राज्य की निरंतर खोज उनकी उल्लेखनीय यात्रा के पीछे प्रेरक शक्ति बन गई।

वर्तमान अध्ययन, सिन्हा के लेखन का केंद्रीय विषय समाजवाद है। यूटोपियन/फैबियन समाजवाद की अवधारणा से लेकर मार्क्सवादी समाजवाद के वैज्ञानिक सिद्धांत तक, उन्होंने दुनिया के विभिन्न हिस्सों में प्रयोग और अभ्यास किए गए समाजवाद के विभिन्न मॉडलों का गहन विश्लेषण किया है। सिन्हा का मानना है कि कोई भी प्रतिभा युग-निरपेक्ष नहीं होती, न ही ज्ञान, विज्ञान और प्रौद्योगिकी युग-निरपेक्ष होते हैं। इस प्रकार वह किसी विचारक या सिद्धांत की शाश्वतता और सार्वभौमिकता के प्रति विद्वानों और नेताओं की प्रासंगिकता का खंडन करता है। वह मार्क्सवाद की समाजवाद/साम्यवाद की नियतिवादी धारणा को स्पष्ट रूप से नकारता है। वह साम्यवाद और पूंजीवाद के कुछ पारस्परिक बिंदुओं जैसे उद्योगवाद, आविष्कारवाद, प्रौद्योगिकीवाद, उत्पादनवाद, उपभोक्तावाद आदि की सावधानीपूर्वक समीक्षा करते हैं। सिन्हा के

अनुसार पूंजीवाद के सामने समाजवाद की हार का कारण केवल सत्ता और अधिनायकवाद के प्रति उसका जुनून नहीं था। , लेकिन इन पारस्परिक रूप से सहमत कारकों के कारण भी। डॉ. राम मनोहर लोहिया की तरह, सिन्हा लोकतंत्र, विकेंद्रीकरण, मध्यम उपभोग और नागरिक/व्यक्तिगत स्वतंत्रता को समाजवाद के अंतर्निहित गुणों के रूप में स्वीकार करते हैं, न कि किसी दूर की जेल के रूप में। यहां वे गांधी की तर्ज पर डॉ. लोहिया द्वारा प्रतिपादित तात्कालिकता के सिद्धांत को स्वीकार करते दिखते हैं।

5. <u>ज्ञान के क्षेत्र में योगदान</u>

प्रस्तावित शोध कार्य के द्वारा डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने बंगाल विधान मंडल में बिहार सृजन से जुड़े हुए प्रश्नों को उठाने एवं रखने का कार्य किया जो कि अभुतपूर्व है। उनके इस कार्य को मेरे शोध कार्य में प्रमुखता से जगह दी जायेगी। जिससे बिहार सृजन से जुड़े प्रश्नों एवं मुद्दो को बारीकी से समझा जा सकेगा। जिससे बिहार सृजन के अध्ययन को एक नई दृष्टि एवं दिशा प्राप्त होगी, जिससे अध्येताओ के ज्ञान में वृद्धि होगी।

उनके द्वारा बिहार सृजन से जुड़े विषय पर बिहार के सभी वर्गो के लोगों को समान धरातल पर लाने का प्रयास किया गया जो कि उनका बिहार सृजन में अमूल्य योगदान है। प्रस्तुत शोध कार्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा के इस योगदान से अध्येताओं को नयी जानकारियों से अवगत कराया जायेगा, जो कि ज्ञानवर्धन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

6. क्षेत्रः

1. प्रस्तुत शोध कार्य के अन्तर्गत बिहार प्रान्त के सृजन से ब्रिटिश कालीन प्रशासनिक एवं राजनैतिक इतिहास निर्माण का कार्य संभव हो सकेगा। इससे बिहार के प्रशासनिक एवं राजनैतिक इतिहास लेखन को बल मिलेगा

क्योकि बिहार प्रांत का सृजन एक प्रशासनिक और राजनैतिक मुद्दा राष्ट्रिय आंदोलन के दौरान रहा है।

2. बिहार सृजन के प्रस्तुत शोध कार्य में बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन एवं उससे जुड़े स्वत्रंतता सेनसनियों का भी योगदान रहा है। अतः बिहार सृजन से इस शोध में उस समय के राजनैतिक एवं स्वाधीनता सेनानियों को भी जानने का अवसर मिलेगा।

7. अध्ययन पद्वतिः

वर्तमान अध्ययन उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक तथा वस्तुनिष्ठ पद्धति का अनुसरण करता है। अध्ययन प्राथमिक स्रोतों पर आधारित है और निष्कर्ष निकालने और व्याख्या करने के लिए माध्यमिक स्रोतों और विषय पर उपलब्ध समृद्ध शोध पत्रिकाओं से परामर्श लेने का हर संभव प्रयास किया जाएगा। समग्रता में इस अवधि के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए एक अंतःविषय दृष्टिकोण बनाया जाएगा। यह मुख्य रूप से साहित्यिक, अभिलेखीय, चित्रकला और अन्य पुरातात्विक स्रोतों पर आधारित एक खोजपूर्ण, वर्णनात्मक, मात्रात्मक शोध होगा।

8. शोध सामग्री की उपलब्ध्ता

उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, बड़ी संख्या में स्रोतों से परामर्श लिया जाएगा। प्राथमिक स्रोतों में, माध्यमिक कार्यों से, पत्रिकाओं, आवधिक रिपोर्टों, रिपोर्टों और गजेटियर्स का भी उपयोग किया व्यापक जाएगा। समकालीन सरकारी दस्तावेज, राष्ट्रीय अभिलेखगार दिल्ली, बिहार स्टेट अभिलेखागार, पी.एम. म्युजियम एण्ड लाईब्रेरी की भी मद्द ली जायेगी

9 परिकल्पना

1. दृढ़ संकल्प की भावना से प्रेरित, डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा प्रशासन की भेदभावपूर्ण प्रथाओं और बिहारियों द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने के अपने प्रयासों में दृढ़ थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि अब एक अलग प्रांत के निर्माण के लिए लड़ने का समय आ गया है जो बिहार को वह मान्यता और स्वायत्तता प्रदान करेगा जिसका वह हकदार है।
2. प्रमुख मुद्दों में से एक जो डॉ. सिन्हा को बहुत परेशान करता था, वह था बिहार की अर्थव्यवस्था और राजनीति में बंगालियों का वर्चस्व। इन क्षेत्रों पर बंगाली समुदाय के नियंत्रण के कारण सत्ता और संसाधनों का विषम वितरण हुआ, जिससे बिहारियों को नुकसान हुआ। अन्याय को बढ़ाते हुए, बंगालियों पर अंग्रेजी शिक्षा के प्रति घृणा रखने, अपने बिहारी समकक्षों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उन्नति के अवसरों से वंचित करने का आरोप लगाया गया।
3. बिहार के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर बंगालियों का अनुचित प्रभुत्व बिहार के अधिवक्ताओं के लिए एक रैली का मुद्दा बन गया। डॉ. सिन्हा अपने कानूनी कौशल और न्याय के प्रति जुनून के साथ इस आंदोलन में एक प्रमुख आवाज बन गए। 1894 में, उन्होंने उप-गवर्नर, सर चार्ल्स डालिमर को एक सम्मोहक ज्ञापन प्रस्तुत किया, जिसमें बिहार को बंगाल प्रांत से अलग करने की तत्काल आवश्यकता को स्पष्ट किया गया। दृढ़ संकल्प की भावना से प्रेरित, डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा प्रशासन की भेदभावपूर्ण प्रथाओं और बिहारियों द्वारा सामना किए गए ऐतिहासिक अन्याय को संबोधित करने के अपने प्रयासों में दृढ़ थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि अब एक अलग प्रांत के निर्माण के लिए

लड़ने का समय आ गया है जो बिहार को वह मान्यता और स्वायत्तता प्रदान करेगा जिसका वह हकदार है।

4. प्रमुख मुद्दों में से एक जो डॉ. सिन्हा को बहुत परेशान करता था, वह था बिहार की अर्थव्यवस्था और राजनीति में बंगालियों का वर्चस्व। इन क्षेत्रों पर बंगाली समुदाय के नियंत्रण के कारण सत्ता और संसाधनों का विषम वितरण हुआ, जिससे बिहारियों को नुकसान हुआ। अन्याय को बढ़ाते हुए, बंगालियों पर अंग्रेजी शिक्षा के प्रति घृणा रखने, अपने बिहारी समकक्षों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उन्नति के अवसरों से वंचित करने का आरोप लगाया गया।
5. बिहार के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर बंगालियों का अनुचित प्रभुत्व बिहार के अधिवक्ताओं के लिए एक रैली का मुद्दा बन गया। डॉ. सिन्हा अपने कानूनी कौशल और न्याय के प्रति जुनून के साथ इस आंदोलन में एक प्रमुख आवाज बन गए। 1894 में, उन्होंने उप-गवर्नर, सर चार्ल्स डालिमर को एक सम्मोहक ज्ञापन प्रस्तुत किया, जिसमें बिहार को बंगाल प्रांत से अलग करने की तत्काल आवश्यकता को स्पष्ट किया गया।

10 कार्य योजना

वर्तमान शोध कार्य का निम्नलिखित अध्यायों में अस्थायी अध्ययन किया जाएगा

अध्याय प्रथम **प्रस्तावना**

अध्याय दूसरा डॉ सच्चिदानंद सिन्हा की भारतीय राजनीति में भूमिका

अध्याय तीसरा डॉ सच्चिदानंद सिन्हा **का बिहार के सृजन में भूमिका**

अध्याय चौथा डॉ सच्चिदानंद सिन्हा सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में

अध्याय पाँचवाँ डॉ सच्चिदानंद सिन्हा पत्रकार के रूप में

अध्याय छठा निष्कर्ष

11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रसाद वर्मा, विश्वनाथ। "बिहार की राजनीतिक व्यवस्था"। द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस। (1987) 48: 506-511.
2. कुमार प्रत्यूष, मिश्रा मदन । डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा द्वारा लिखित एक लंबे जीवन की स्मृतियाँ और स्मृतियाँ। नई दिल्ली, भारत: अनामिका पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड (2022) आईएसबीएन 978-9391524098।
3. सिन्हा, बागीश्वर। सच्चिदानंद सिन्हा. प्रकाशन प्रभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (1969)। पृ. 9-15.
4. पबित्रा सिन्हा भास्कर। "बिहार प्रांत के निर्माण में सच्चिदानंद सिन्हा की भूमिका"। भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही (1971). 33.
5. "द इंडियन एक्सप्रेस - गूगल न्यूज आर्काइव सर्च" । news.google.com. 23 फरवरी 2023 को पुनः प्राप्त.
6. कुमार हिमांशु मधुकर, डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा: बिहार और आधुनिक भारत के निर्माता।
7. सागर, उमंग। "सच्चिदानंद सिन्हा की जीवनी | सच्चिदानंद सिन्हा कौन थे? | सच्चिदानंद सिन्हा के बारे में सब कुछ जानें- 13एंगल | नई रेंज"। 13कोण. 12 मार्च 2023 को लिया गया.
8. "सच्चिदानंद सिन्हा मृत"। इंडियन एक्सप्रेस. 7 मार्च 1950. पृ. 1. 17 मई 2017 को लिया गया.
9. भारत की संविधान सभा 6 जुलाई 2016 को वेबैक मशीन पर संग्रहीत की गई

10. "सिन्हा लाइब्रेरी उपेक्षा का शिकार" । द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया। 5 नवंबर 2011 को मूल से संग्रहीत। 20 जून 2012 को लिया गया।

11. "भारतीय संविधान के इतिहास पर एक संक्षिप्त जानकारी"। वकीलों का दल. 2020. 5 जून 2020 को लिया गया.

12. इंडियन एक्सप्रेस 7 मार्च 1950 "सच्चिदानंद सिन्हा मृत"। 8 मई 2023 को पुनःप्राप्त।

पर्यवेक्षक के हस्ताक्षर

शोधार्थी के हस्ताक्षर

डॉ. अमीर अली खान
एसोसिएट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
ल.ना.मि.वि. दरभंगा

प्रवीण कुमार
इतिहास विभाग
ल.ना.मि.वि. दरभंगा